भारतीय संस्कृति और परिवर्तन की चुनौतियाँ

'पुष्पा बुटोलिया

स्वाभाविक है जब हम इस समय संस्कृति की बात करते हैं और वह भी भारतीय संस्कृति के परिप्रेष्य में तब अनेक चुनौतियाँ हमारे सामने खड़ी हो जाती हैं। भूमंडलीकरण के दौर में जब सारी चीजों में परिवर्तन आया है और उथल–पुथल भी हुई है तो इसके खतरे भारतीय संस्कृति के सामने भी हैं। दूसरी बात यह देखने में आ रही है कि यहाँ के लोग पाश्चात्य संस्कृति में ढ़लना चाह रहें हैं और विदेशों में भारतीय संस्कृति काफी लोकप्रिय हो रही है। हिटलर का जनरल 'गोयबल्स' कहता था कि, ''जब कोई संस्कृति का नाम लेता है तो मेरा हाथ पिस्तौल पर चला जाता है।'' उसने यह बात किस मनोदशा में कही होगी अथवा क्या संस्कृति कि बात करना विवाद को जन्म देना हैं। स्पष्ट है कि कुछ ऐसी बात है जिससे संस्कृति का नाम लेते ही गोयबल्स को गुस्सा आ जाता होगा लेकिन आज स्थिति यह है कि जब कोई संस्कृति का नाम लेता है तो ये लगता है कि इस भाव के पीछे कितनी हिंसा एवं खून खराबा छिपा होगा। संस्कृति की शुद्धता जैसी कोई प्रक्रिया नहीं होती। संस्कृति हमेशा आपसी मेलजोल और विभिन्न समुदायों, समूहों के परस्पर संबंधों से निर्मित व विकसित होती है कविवर 'रविन्द्र नाथ ठाकुर' ने संस्कृति को धर्मनिरपेक्ष बताते हुये कहा था कि, ''एक ही संस्कृति के लोग अस्तिक और नास्तिक दोनों हो सकते हैं।'' साहित्य, कला, संगीत, पुरातत्व आदि सभी का उकृष्ट स्वरूप विभिन्न संस्कृतियों के मिले–जुले रूप में ही निकलता हैं। विभिन्न जातियों उनकी परम्पराओं, धार्मिक विश्वासों के मिलने से एक सुन्दर और नई संस्कृति का निर्माण होता है। यही किसी राष्ट्र की सांस्कृतिक विरासत है और भारत की सांस्कृतिक विरासत का ऐसा ही स्वरूप है। संस्कृति की प्रकृति है कि वह शुद्ध हो ही नहीं सकती। संगीत तथा ललित कलाओं के बीच एशिया की संस्कृति का प्रभाव ही भक्ति साहित्य की विरासत तथा मिली–जुली संस्कृति का उत्कृष्ट उदाहरण है। आज के समय में आर्थिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक संकट तीनों ही एक दूसरे से जुड़े हैं, तेजी से उभरती सांप्रदायिकता और जातिवाद भी इन्हीं की देन हैं। आज विभिन्न समुदायों के बीच अपनी पहचान का संकट जैसी प्रक्रिया भी जोर पकड़ रही हैं। जब सांस्कृतिक शुद्धता की बात की जाएगी तब अलग–अलग समुदायों एवं वर्गो में पहचान का संकट भी गहरा होता जाएगा। राष्ट्र केवल राजनीतिक नहीं बल्कि सांस्कृतिक इकाई भी होता है। किसी भी सही माध्यम से इस संस्कृति एवं सच्चे राष्ट्रवाद की पहल की जानी चाहिए। संस्कृति संपूर्ण जीवन से जुड़ी हुई है। आज संस्कृति के समक्ष ही नहीं बल्कि संपूर्ण व्यवस्था के सामने खतरा पैदा हो गया है। विदेशी कंपनियों की नजर भारत की प्राकृतिक संपदा पर लगी हुई है। ऐसे में भारतीय संस्कृति का महत्व और भी बढ़ गया है। संस्कृति से बड़ी चीज मनुष्यता है तथा भारतीय संस्कृति का मुख्य बिन्दु मनुष्य था। आज फिर हमारे सामने मनुष्य को बचाने का संकट धर्म के नाम पर कट्टरतावाद का संकट तथा आतंकवाद का संकट पैदा हो गया है। भारतीय संस्कृति पर अनेक संस्कृतियों का प्रभाव है।

भारत प्राचीन देश है, यहाँ ऋषियों ने वनों, नदियों, तटों और पर्वतों की रमणीय कन्दराओं में बैठकर ईश्वर ज्ञान को प्राप्त किया था उस ज्ञान के प्रकाश से भारतीय संस्कृति का मार्ग प्रकाशित हुआ है। आज भी भारतीय संस्कृति का मूल आदर्श आत्मा का ज्ञान ही है। उसमें संसार के विनाशशील तत्वों के प्रति मोह नहीं है। आर्य इसी देश के वासी हैं इस पर इतिहास के विद्वानों में मतभेद है। पश्चिमी विद्वान आर्यो का निवास स्थान मध्य एशिया मानते आए हैं। जर्मन वासी मैक्समूलर इस बात का प्रचारक बना परंतु लोकमान्य तिलक तथा जयशंकर प्रसाद जैसे हिन्दी के विद्वान और लेखकों ने सिद्ध कर दिया है कि आर्य यहाँ के ही रहने वाले थे। आर्यों के साथ द्रविड़ों का युद्ध किसी देश के दो भागों में रहने वाले शासकों का युद्ध था। वास्तव में आर्यों की संतान ही भारतवर्ष है। भारत का नाम ही यहाँ के संतो के नाम पर हैं। ब्रह्म देश, आर्यावर्त, भारतवर्ष आदि नाम इसी के प्रमाण हैं, इसलिए हमारी संस्कृति आर्य संस्कृति और सच्चे अर्थो में भारतीय संस्कृति है।

देश में होने वाले धार्मिक आंदोलनों ने इस संस्कृति को और विशाल बनाया है। बौद्ध, जैन, शैव, शाक्त, वैष्णव धर्म प्रचारकों ने भारतीय संस्कृति में अनेक तत्त्व जोड़े है जिनमें सहनशीलता, अहिंसा, परोपकार आदि का नाम उल्लेखनीय है। व्यास के बारे में भी कहा जाता है कि उन्होंने अठारह पुराणों में दो ही बातें कही हैं। परोपकार पुण्य के लिए होता है और पाप दूसरे को पीड़ा देने के लिए। इसलिए हमारी संस्कृति में पाप और पुण्य की परिभाषा बड़ी स्पष्ट की गई है।

भारतीय संस्कृति की विशेषता है सब धर्मों एवं संप्रदायों की शिक्षा को एक साथ लेकर चलना और सामूहिक रूप से देश को एक मानना, तभी तो भारत में लिखे गए रामायण, महाभारत ही नहीं वेद, उपनिषद, पुराण आदि ग्रन्थ भी सारे देश में एक समान पूजे जाते हैं। तुलसी के रामचरित मानस का प्रभाव भी देश में इसी प्रकार विद्यमान है। संस्कृति में चार तत्त्व विद्यमान रहते हैं चरित्र, विज्ञान, साहित्य, और धर्म। चरित्र से अर्थ है, व्यापारिक, नैतिक और पारिवारिक चरित्र, व्यापार में ईमानदारी, शरीर और परिवार में चरित्र की पवित्रता भी संस्कृति का अंग है। विज्ञान का अर्थ साइंस से ही है। विज्ञान का अर्थ आत्मा का विशेष ज्ञान से भी है। संस्कृति के क्षेत्र में साहित्य का अर्थ विस्तृत वांग्मय ही माना जाता है धर्म का अंग भी संस्कृति का मूल है। पश्चिम की संस्कृति भौतिकता

प्रवक्ता, राजनीति विज्ञान, राज. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दौसा

प्रधान है, वहाँ संघर्ष ही जीवन रहा है। भारत में प्राचीनकाल में प्राकृतिक संसाधन बहुत प्राप्त थे। अतः धार्मिक प्रवृति का उदय हुआ जो भारतीय संस्कृति में सम्मिलित होता गया है। इस प्रकार ये चारों संस्कृति के अंग हैं।

भारतीय संस्कृति में प्रेय और श्रेय के दो रूप माने गए है। प्रेय कहते है लोक में कर्म करते हुए अभ्युदय उन्नति प्राप्त करना अर्थत् धर्म पूर्वक अच्छे कर्मो को करते जाना और निरंतर लोक में मानसिक शांति प्राप्त करना। श्रेय कहते हैं आत्मिक उन्नति प्राप्त करना। आत्मा के ज्ञान से अपने को सदा प्रकाशित रखना परलोक में मुक्ति पाने के लिए विश्वास रखना और आत्मिक ज्ञान से ही मुक्ति पाना भारतीय संस्कृति में भौतिक पदार्थों के भोग के प्रति अनास्था नहीं व्यक्त की गई है अपितु लोक में रहते हुए शांतिपूर्वक भोगों को भोगते हुए भी जीवन को उन्नत करने का मार्ग बताया गया है। कर्म करना भारतीय संस्कृति का प्रधान उपदेश रहा है। देश में नारी का सम्मान करने की धारणा मनुस्मृति के समय से चली आ रही है। कोई देश संस्कृति के बिना नहीं जी सकता। अपनी संस्कृति विश्व मानवता को सुख देने की है। यहाँ सबको सुखी और निरोग देखने की कामना की जाती रही हैं–

सर्वे भवन्तु सुखीनः सर्वे सन्तु निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्च्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग भवेत्।

संक्रमण एक ऐतिहासिक प्रक्रिया है उसका हमेशा दुखदायी होना आवश्यक नहीं। परिस्थितिगत परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन की अनिवार्यता बन जाते हैं। मंद गति में होने वाला अनुकुलन समाज की निरंतरता को प्रभावित नहीं करता। सच तो यह है कि उसके बिना सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक मूल्य दोनों के विधटित होने का खतरा होता है। परिवर्तन को प्रेरित करने वाले अनेक कारक हो सकते है– नई आवश्यकताएँ, सुरक्षा की पर्याप्त और विश्वसनीय व्यवस्था, अत्यधिक श्रम और एकरसता कम करने वाली सुविधायें, नए प्रतिष्ठादायक उपादान आदि अन्य सांस्कृतियों के तत्व और नवाचार उनकी गुणवत्ता के आधार पर अपनाए जाते हैं। कभी–कभी उनके नएपन और प्रतिष्ठा के लिए भी यहाँ भी जरूरी है। परिवर्तन किसी समाज पर थोपा न जाय, वह उसके केन्द्रीय मूल्यों से टक्कर न ले और समाज को अपनी गति से अन्य सांस्कृतिक तत्वों को आत्मसात करने का अवसर हो। सच तो यह है कि किसी भी संस्कृति में अपने मौलिक तत्व थोड़े ही होते है अधिकांश तो बाहर से आते और अपनाए जाते हैं। इस प्रक्रिया में संस्कृति उन्हें अपने साँचे में ढाल लेती है और इस तरह उनकी उपयोगिता बढा लेती है। भारत ने शेष विश्व को क्या दिया? बगदाद के अरब कवि अल सभादी के अनुसार तीन चीजें–अंक और गणना पद्धति (दशमलव बिंदु के साथ) शतरंज का खेल और कथायें वाल्लेयर की सूची में इसके अतिरिक्त दो तत्व और हैं–चौसर (और पाँसे) का खेल और रेखा गणित के आरंभिक सुत्र। बात यह नहीं है कि भारत ने और भी कुछ दिया था या नहीं अन्य सूचियों में योग, खगोल शास्त्र, उदात्त दार्शनिक चिंतन, चरक और सुश्रुत का आयुर्विज्ञान आदि शामिल है।

संस्कृति और परंपरा दोनों मानसिक संकल्पनायें हैं। इसका प्रतिरूप या तो समाज उसके इतिहासकार, साहित्यकार, दार्शनिक और सांस्कृतिक व्याख्याकार स्वयं गढ़ते है या दूसरों के गढ़े प्रतिरूप को ग्रहण कर लेते हैं या उसमें से अधिक प्रतिस्पध र्ी प्रतिरूप एक साथ अस्तित्व में रहते हैं इस तरह के किसी प्रतिरूप में संस्कृति के सभी तत्वों का समावेश संभव नहीं होता। उन्हें एक निश्चित योजना के अनुसार संजोया जाता है। कौन से तत्व चुने जाते हैं और कौन से छोड़े जाते है वह इस पर निर्भर होता है कि हम बाहरी दुनिया को अपना कैसा चेहरा दिखाना चाहते हैं। युद्ध और शांति दोनों हमारी परंपरा के अंग हैं। अपने आप को शांति के अग्रदूत के रूप में प्रक्षेपित करते समय हम साहित्य के वीर गाथा काल का स्मरण नहीं करते। हालाँकि हमें अपने प्राचीन विनाशकारी शस्त्रों की क्षमता पर गर्व है और विजय की स्मृतियाँ हमें गद्गद कर देती हैं।

संस्कृति को देखने–समझने के मुख्यतः दो दृश्टिकोण अपनाये गए हैं– वृक्ष प्रतिरूप और नदी प्रतिरूप। पहला दृष्टिकोण संस्कृति को वृक्ष रूप में देखता है समान जड़ें, एक तना और अनेक शाखायें भारतीय मूल के धर्मों और उनसे जुड़ी सांस्कृतियाँ बौद्ध, जैन, सिख में यह उपमा अंशतः सही है। पर प्रश्न यह है कि क्या हम चार्वाक, लोकायत बौद्ध, जैन, सिख मतों को केवल शाखायें मान सकते हैं ? ये शक्तिशाली प्रति सांस्कृतियाँ थी जिन्होंने वैदिक हिंदू धर्म की धारा को एक नया मोड़ देने का प्रयत्न किया, उसके लक्ष्यों और साधनों की नई व्याख्या की भारतीय चिंतन धारा में उनके तत्व घुल–मिल गए और उनमें से कुछ आज के सांस्कृतिक प्रतिमानों में शीर्ष स्थानों पर हैं। संत कवियों और सुधारकों ने भी नए पंथ बनाए जो मूलतः ऐसी प्रति संस्कृति के रूप में उभरे। जिसने हिंदू समाज के अमानवीय पक्षों को विरोध किया और सामाजिक न्याय का नारा बुलंद किया। वे पूरी तरह सफल भले ही न हुए हों, पर उनसे उपजी समाजिक क्रांति की चिनगारियाँ निश्चित रूप से प्रभावशाली थीं, कबीर, ज्योतिबा फुले और नारायण गुरू की शृंखला भुलाई नहीं जा सकती। दूसरा प्रतिरूप संस्कृति को एक बड़ी नदी के रूप में देखता है, जिसमें अनेक पृथक उद्गमों से आई धारायें मिलकर अंततः एक विशाल धारा वाली नदी का रूप ले लेती है। यह ठीक है कि पृथक श्रोतों की धारायें मिलती है पर वे अपनी प्रकृति गुण और धर्म पूरी तरह नहीं त्यागती। विशेष स्थितियों में ध ाारायें मिलने के बाद अलग भी हो सकती हैं। हिन्दु और इस्लामी धारायें पास आई, उनमें आदान प्रदान हुआ। विश्वास और सहयोग का आधार बना। पर एकाएक उसमें दरार फूटी जो दिन प्रति दिन गहरी और चौड़ी होती जा रही है, यह क्यों हुआ ? सिक्खों में अलगावाद क्यों आया ? भारत में जाति युद्ध का आरंभ क्यों हो रहा है ? तीसरा प्रतिरूप कथा का हो सकता है जिसका निर्माण अलग–अगल रगों आकारों और बुनावटों के कपड़ो को जोड़कर लिया गया हो, शायद यह आज के सांस्कृतिक

यथार्थ का अधिक विश्वसनीय प्रतिबिंब हो– स्थानिय और क्षेत्रीय संस्कृतियों का सभ्यता सुत्रों से मिलाया गया रूप जिसमें विविध्ता भी है, एकता भी इस प्रतिरूप को स्वीकृति नहीँ मिल रही है। कारण है कई समूहों का सांस्कृतिकरण उच्च भाव और कट्टरवादी हठवादिता धर्म और परंपरा का राजनीतिकरण आग में घी का काम कर रहा है आज देश में अनेक विघटनकारी शक्तियाँ हमारी सांस्कृतिक नीवं पर हमला कर रही हैं पर स्थिति अभी भी ऊर्जा और अदम्य जीवन आकांशा शेष है। अपसंस्कृति और उसकी विकृतियाँ अधिकांशतः समृद्ध वर्ग तक सीमित हैं पर उनका विष धीरे धीरे लोक सांस्कृतियों की ओर फेल रहा है। आज नहीं तो कल स्थिति गंभीर हो सकती है। हमारे सामने परिवर्तन की कौन सी चुनौतियाँ है? छद्म आधुनिकीकरण पहली चुनौती है। हमने आधुनिकता के आधार मूल्य तार्किक विवेक, पुरानुभूति, सामाजिक गतिशीलता और सक्रिय सहभागिता नही अपनाए हम उस उसके बाध्य उपभोगवादी लक्षणों में ही उलझ कर रह गये हैं। इससे व्यक्ति केन्द्रिकता बढ़ी है, सामाजिक सरोकार का ह्रास हुआ है व्यक्तिगत धरातल परलोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया ने सामाजिक स्थिति और भूमिका को डगमगा दिया है। धर्म निरपेक्षता आज के संदर्भ में धर्म विमुखता बन गई है धर्म के आधार पर सिद्धांत विस्मृत होते जा रहे है, तांत्रिक और चमत्कारी बाबा फल–फूल रहे है क्योंकि वे अच्छे दामों पर स्वार्थों की सेवा में रत हैं। हमारी संस्कृति अनुकरण की भोगवादी और लिप्सावादी संस्कृति बन गई है। आर्थिक उदारता, खुलापन और वैश्वीकरण संसार भर में एक अपसंस्कृति फैला रहे है। हम इस प्रवृत्ति के असहाय दर्शक मात्र बन गए हैं। दूसरी चुनौती है धर्म के दुरूपयोग की। जहाँ एक सशक्त नवजागरण का प्रतिबद्ध प्रयत्न होना चाहिए था। धर्म की उदात्त भावनायें और मंगलकारी सिद्धांत भुला दिये गये हैं तथा विवेकहीन धर्माता को प्रश्रय दिया जा रहा है और तीसरी चुनौती है अविवेकी और निकट दृष्टि की राजनीति की। जहाँ विश्व के सामने शुद्ध पर्यावरण, ऊर्जा, भूख निवासहीनता और सार्वजनिक स्वास्थ्य के विराट प्रश्न उत्तरों की खोज कर रहे हैं–हम कुर्सी और सत्ता के खेल में लगे हैं। किसी को भविष्य की चिंता नहीं है ? समय रहते हमें स्थिति की भयंकरता का जायजा लेना है और अपना भविष्य स्वंय अपने हाथों में लेना है। अक्सर समन्वय शब्द का प्रयोग भारतीय संस्कृति के सन्दर्भ में होता रहा हैं। समन्वय का तात्पर्य विभिन्न विश्वासों और जीवन प्रकारो का सह–अस्तित्व है। समंन्वय का यही अर्थ लिया जाता है कि उसमें कुछ अलग–अलग चीजें मिली–जुली हों, अन्वय शब्द का अर्थ है एक दूसरे से संबंध होना, समन्वय का अर्थ अच्छी तरह संबंध होना है। समन्वय की स्थिति में जो पदार्थ जुड़ते है, वे अलग–अलग भी पहचाने जा सकते हैं और परस्पर संबंध रूप में भी जिस रूप में वे निरपेक्ष हैं या किसी बाहरी पदार्थ के सापेक्ष हैं, वहाँ वे विलगाव के कारण बनते हैं पूरी तौर पर समन्वय समरसता से आता है, एक दूसरे के लिए चाह से आता है समन्वय अधूरा रहता है या एक विशेष उद्देश्य से रहता है वहाँ विलगाव हो जाता है। हिन्दुस्तान–पाकिस्तान का विभाजन इसका प्रमाण है। विभाजन के बाद भी कहीं न कहीं आकांक्षा पाकिस्तानी और हिंदुस्तानी के बीच अब भी कहीं कभी न कभी अंकुरित होती रही है।

स्व में सर्व और सर्व में स्व को देखना उदार और समन्वय की उदात्त भावना इसी की देन है सहिष्णुता ऐक्य भावना और समन्वय के फलस्वरूप भारतीय संस्कृति अजेय और सर्वोपरि रही। बौद्ध धर्म के चैत्य कालांतर में हिंदू मंदिर बने यहाँ भगवान बुद्ध की आराधना होने लगी। मकबरों की पूजा और पैगबरों की भक्ति आराधना में कव्वाली सूफी संतों का राम, रहीम, कृष्ण करीम का अलख भारतीय संस्कृति की महान् शक्ति कें पुंज हैं।

संस्कृति मिली–जुली अनेक विचारधाराओं, परंपराओं और विविध बातों से संबंधित एक ऐसी गंगा की धारा हे जिसमें सामाजिक विचारधारा रूपी छोटी–बड़ी नदियाँ यहाँ तक कि सँकरी नालियाँ भी आकार मिलने पर गंगा की ही भाँति पवित्र बन जाती हैं इस तरह इसमें देश काल गत संकुचितता के लिए अवकाश नहीं रह जाता। इन्हीं मौलिक एवं तात्विक विचारधाराओं को ध्यान में रखते हुए, विश्व को समन्वय की दृष्टि से भारतीय संस्कृति में देखा गया है और इसी से 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सिद्धान्त का प्रादुभार्व हुआ।

इसी प्ररिप्रेक्ष्य में संस्कृति की व्याख्या इन शब्दों में की गई है–किसी देश या समाज के ही नहीं बल्कि विश्व के मानव जीवन के विभिन्न व्यापरों की सामाजिक संबंधों की अथवा मानवता की दृष्टि से प्रेरणा देने वाले उन विविध आदर्शों की समष्टि को ही संस्कृति कहते हैं। संस्कृति मानव समाज के आंतरिक और सभ्यता बाह्य क्रियाकलाप से संबंधित होती है। संस्कृति को स्वीकार करने में देर लगती है परंतु सभ्यता का अनुकरण शीघ्र किया जा सकता है। संस्कृति का संबंध निश्चित रूप से मानव कर्त्तव्यों और उनके शाश्वतिक विश्वासों से होता है जबकि सभ्यता बाह्य दिखावा और बाह्य आचरण से संबंध रखती है। संस्कृति समष्टिगत समान अनुभवों से उत्पन्न होती है व्यापक अर्थो को समाविष्ट किए मानव संस्कृति के संदर्भ में भारतीय संस्कृति अपने ढंग की अनुठी है। विश्व में भारतीय संस्कृति के संबंध में ही गर्वपूवक कहा जा सकता है कि सहस्त्रो वर्षो से उसका जीवन सतत् अविच्छिन्न है। इसे मिटाने के लिए विदेशियों ने आक्रमण किया परंतु बड़ी सहिष्णुता उसने काम लिया और अपने स्थान पर स्थिर रही मिस्र बेबीलोन युनान तथा रोम की सभ्यता व संस्कृति या तो जीर्ण शीर्ण होकर नष्ट हो गई या उनमें आमूल चूल परिवर्तन आ गया केवल भारतीय संस्कृति जिसे विदेशी विद्वानों ने आर्य संस्कृति की संज्ञा प्रदान की अपने प्राचीन रूप में अभी तक जीवित ही नहीं बल्कि निरंतर नवजीवन प्राप्त करती रही है। हिमालय के उत्तुंग शिखरों पर या पावन सलिला भागीरथी के कछारों में विन्ध्याचल की धाटियों में अथवा कावेरी के तटों पर हमें 'आसेतु हिमालय' सर्वत्र ऐसे स्त्री–पुरुष मिलेंगे जिने हम

आर्य संस्कृति अथवा भारतीय संस्कृति का प्रतीक या प्रतिनिधि कह सकते हैं। भयंकर संकट काल में भी भारतीय संस्कृति की श्रृंखला टूटी नहीं। पतन के प्रत्येक अवसर पर विजय इसी के हाथ रही यह कभी कट्टर बनते, दूसरो को जबर्दस्ती दबाने, दूसरों पर थोपी जाने शक्ति बल से दूसरों को अपने में मिला लेने के उपक्रम में शामिल नहीं हुई। आध्यात्मिक भावना संस्कृति के मूल में है। आध्यात्मिकता उसकी धुरी है, अद्वैत भावना के प्राबल्य के कारण कट्टरपन का अभाव भारतीय संस्कृति की अद्वितीयता है। भारतीय संस्कृति मूल रूप के केन्द्रोन्मुखी रही है। आदर्शोन्मुखी और अन्तःस्थ तथा आत्मस्थ इसमें बाह्य प्रसार की भावना का समावेश नहीं रहा, क्योंकि यह आचरण प्रधान है, इसमें अंतर प्रवृत्तियों के उत्कर्ष पर बल दिया गया है। त्याग, आत्मनियंत्रण तथा आत्मशुद्धि तथा तदनुकूल आचरण भारतीय संस्कृति के समन्वयात्मक दृष्टि के परिचायक है।

भारतीय संस्कृति की अभिव्यक्ति धर्म भावना द्वारा होती है। इसकी दृष्टि में धर्म किसी पंथ का सूचक नहीं वह तो अहंकार को तिरोहित करके देशकाल में बन्धनों को काटकर मनुष्य को अँधकार में से प्रकाश में, मृत्यु के मुख में से अमृतमयी जीवन में, पशुता में से मानवता में और मानवता में से अलौकिकता में ले जाने वाला शाश्वत तत्व है। इसी तत्व के भौतिक सुखों से दूर रहकर शुद्ध सात्विक जीवन जीने का मार्ग दर्शन किया हैं। राष्ट्र, समाज, कला, चिन्तन, आचार–विचार सबके मूल में आध यात्म भावना निहित है।

भारतीय संस्कृति संसार की ज्ञान–विज्ञान की प्रबल समर्थक रही हैं। भौतिक ऐश्वर्य से मुँह मोड़ना उसे स्वीकार नहीं। भारतीय संस्कृति उपभोग को विषयों के आस्वाद को हेय या त्याज्य नहीं मानती किंतु उसकी तह में विद्यमान आध्यात्मिकता उसे नैतिक रूप प्रदान करती है। जलवायु, रहन–सहन भाषा–बोली, खान–पान, रूप–रंग, चरित्र, संस्कार, शारीरिक गठन, वनस्पति जीवन और जाति–पाति की भिन्नता के बावजुद सांस्कृतिक धार्मिक, भावात्मक एकता का अटूट बन्धन भारतीय संस्कृति की अमूल्य उपलब्धि है। भौगोलिक रूप में तीर्थस्थलों ने पूरे देश को एकसूत्र में बाँध रखा है। विचार रीति रिवाज की दृष्टि से भारत का निवासी भारतीय संस्कृति से जुड़ा है। विस्मय कारक विविधता के बावजूद भारतीयता की अमिट छाप हमें संगीत कला, साहित्य, स्थापत्य आदि में सर्वत्र मिलता है। ईश्वर पर चिर विश्वास के साथ चार्वाक का सुखवाद दोनों को भारतीय संस्कृति ने आश्रय दिया है।

भारतीय संस्कृति में नैतिकता को प्रमुख स्थान प्रदान किया गया है । दुख दूर करने व मित्रों की सहायता में संचित ध ान को व्यय करने की दायित्व का रूप प्रदान कर भारतीय संस्कृति ने 'बहुजन हिताय बहुजन. सुखाय' के सिद्धान्त को मान्यता प्रदान की है। अर्थ तथा काम की तुलना में धर्म को श्रेष्ठता प्रदान करके ही मोक्ष का मार्ग प्रशस्त किया है। यह सत्य है कि बाहर से देखने वाला कोई भी प्रेक्षक भारतीय संस्कृति की अद्भुत विविधता को देखकर चकित हो जाएगा। वे अनेक में एक समष्टि में व्यष्टि और मिश्रित में सख्त को देख नहीं पाते हैं उनके अनुसार भागों में बँट जाने से समग्र का अंत हो जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि मस्तिष्क का उत्कृष्ट निर्वचन संयोग और संश्लेशण की शक्ति पैदा की जाय जो स्थिति को समग्र रूप में देख सके। तीक्ष्ण अंतर्वेशी अन्तर्दृश्टि वाला व्यक्ति भारत की नानाविध विविधता में मूलभूत एकता को पहचानने में कोई गलती नहीं करेगा। सर हरबर्ट राइसली ने ठीक ही कहा था ''प्राकृतिक और समाजिक स्वरूप भाषा रीति–रिवाज और धर्म की नानाविध ा विविधता होते हुए भी जो भारत में प्रेक्षक का ध्यान आकर्शित करती है। यहाँ के जीवन में एक प्रकार की एकरूपता अंतर्निहित है जो हिमालय से कन्याकुमारी तक सारे देश को एक सुत्र में बाँध हुए हैं।'' भारत में अपने दीर्घकालीन और प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर विन्सेन्ट स्मिथ ने कहा है कि ''भारतीय संस्कृति में ऐसी बहुत सी विशिष्टतायें है जो इसे विश्व के अन्य सभी देशों में अलग कर देती है परंतु वे सारे देश में इस मात्रा तक समान रूप में पाई जाती हैं जिससे यह सिद्ध हो जाय कि मानव समाज और बुद्धि विकास के इतिहास में यहाँ समरूपता है।'' सैमुअल वी0 हैंटिंग्टन ने अपने चर्चित पुस्तक Clashes of civilisation में लिखा है, ''आने वाले समय में दो संस्कृतियाँ आपस में टकरायेंगी आने वाले समय में दो लड़ाईयाँ होंगी.......... ''

समन्वय की संभावना एक और कारण से हमारे देश में बनी, हमारे देश में नस्लपरस्ती नहीं, न उसकी कोई याददाश्त है। भारत के परिवेश में यह सुखद बात थी कि हिंदू विचारधारा काफी दूर थी इस्लाम से और ईसाइयत से अतः यहाँ पहले ही धर्म जितना था, उतना साफ था, उसे मानकर ही जुड़ाव हुआ ज्ञान–विज्ञान का विनियम हुआ यह उदार उत्ताराधिकार हम समझ ले, हम सबका हैं, बावजुद तात्कालिक तनावों के समन्वय की दिशा खोएगी नहीं आस–पास ही मिल जाएगी। भारतीय संस्कृ ति किसी से कुछ छीनती नहीं, किसी से कुछ वसूलती नहीं, बस सुगन्ध की तरह छा जाती है जो उसमें एक बार शामिल हो जाता हैं। शामिल होने की और कोई शर्त नहीं सिवाय इसके कि जिस देश के पंच महाभूतों (पृथ्वी, जल, अग्रि, वायु और आकाश) के साथ सम्पर्क करते हों। उस देश की उदारता और रमणीयता, दूसरों के लिए आतिथ्य में बिछ जाने की विनम्रता और दूसरों को प्रिय लगने के लिए सहज मधुरता को समझो। ये भाव किसी जाति विशेष धर्म ग्रन्थ विशेष की इजारदारी नहीं, सबके हैं बस हाथ बढ़ाओ तुम्हारी अंजलि में जितना आए, वह तुम्हारा है।